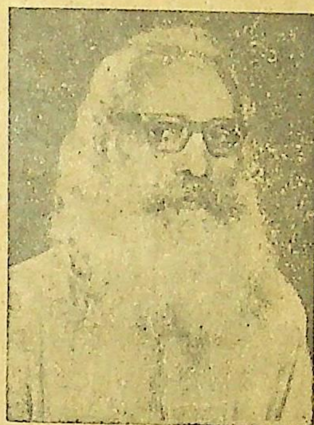
ओ३म्

आर्य समाज क्या है ?



प्रणेता :–

वेदवागीश, व्याख्यान वाचस्पति
पूज्यपाद श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये १५०) रुपये
आर्य स्त्री समाज करोड़ भवन–दयानन्द मार्ग
शकूर बस्ती, दिल्ली
ने प्रदान किये ।



प्रकाशक—

वैदिक संस्थान, नजीबाबाद
जिला बिजनौर : उत्तर प्रदेश

वसन्तोत्सव २०३८ विक्रमाब्द
१० मार्च सन् १९८२ ईसवी

तृतीयावृत्ति
१२००

मूल्य : ५० पैसे

मुद्रण स्थान: —
रोहित प्रिंटिंग प्रेस, नजीबाबाद-२४६७६३

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज क्या है ?

किसी संस्था को समझने के लिये उसके संस्थापक को समझना अत्यावश्यक है। यही बात आर्य समाज के विषय में भी चरितार्थ होती है। आर्य समाज को समझना हो तो पहले आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती को समझना पडेगा। महर्षि दयानन्द को समझे बिना आर्य समाज को नहीं समझा जा सकता।

महर्षि दयानन्द को समझने के लिये आवश्यक है उन के मन्तव्यों को समझना। किसी व्यक्ति को चाहे वह साधारण हो अथवा असाधारण–तब तक नही समझा जा सकता, जब तक उसके मन्तव्यों को न समझ लिया जाय।

जिन महापुरुषों ने अपने पीछे अपना कुछ साहित्य छोडा है, उन्हें समझने के लिये उन के साहित्यों का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। उनके साहित्य में उनका दृष्टिकोण होता है और वह दृष्टिकोण उनके ग्रन्थों के अध्ययन से अध्ययन करने वाले को प्राप्त हो जाता है।

यदि किसी महापुरुष का साहित्य उपलब्ध न हो, उसने साहित्य-रचना की ही न हो तो उसका जीवन चरित्र भी उस महा पुरुष के मन्तव्यों की जानकारी करा देता है। परन्तु तब—जब किसी निष्पक्ष लेखक के द्वारा वह लिखा गया हो। यदि किसी

पक्षपाती तथा मतवादी स्वार्थी लेखक के द्वारा वह लिखा गया हो तो उसमें लेखक द्वारा स्व–मान्यताओं का मिश्रण कर दिया गया होगा तथा स्व-स्वार्थी की सिद्धि के लिये उसमें अनेक अनर्गल बातें भरदी गयी होंगी। ऐसी स्थिति में कभी-कभी तो वास्तविकता का पता लगाना और तथ्य को जानना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र के विषय में ऐसी वात नहीं है। एक तो उसका प्रारम्भिक कुछ अंश स्वयं महर्षि द्वारा वर्णित है। दूसरे जो महर्षि–चरित्र के सर्व प्रथम लेखक थे, वह न तो कभी महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आये थे और न उन के द्वारा संस्थापित आर्य समाज से उनका कोई सम्वन्ध था। सम्बन्ध तो दूर रहा, उनको महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के विषय में कोई जानकारी भी नहीं थी।

महर्षि दयानन्द के देह-त्याग के पश्चात ब्राह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन बंगाली ने उन्हें महर्षि के विषय में, उन के कर्त्तत्व और व्यक्तित्व के विषय में कुछ वातें वतायी थीं जिन्हें सुनकर उन्हें ऋषि के विषय में विषद जानकी प्राप्त करने की धुन सवार हुयी। उस धुन में उस बंगाली युवक ने अपनी जीवन भर की अर्जित की हुई समस्त सम्पत्ति होम दी। जहाँ-जहाँ ऋषि के जाने और जिस-जिस से भेंट व वार्ता करने का उसे पता चलता गया, वह युवक वहीं-वहीं गया और उन लोगों से मिला, जिनसे महर्षि की भेंट और वार्तालाप हुआ था। इस प्रकार उसने तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर ऋषिवर की जीवन गाथा का संकलन किया, यद्यपि इस कार्य में उसके स्वास्थ्य का भी विनाश हो गया। जिस व्यक्ति ने अपना स्वास्थ्य और जीवन भर की कमायी इस कार्य के लिये होम दी, वह स्वार्थी तो हो ही नहीं सकता। ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से उसका सम्बन्ध तो

क्या परिचय भी नहीं था, इसलिये पक्षपाती भी वह नहीं था। उस धुन के धनी युवक का नाम था देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।

ऐसी स्थिति में—जब लेखक का न तो स्वार्थ हो और न उसमें पक्षपात हो—जीवन चरित में न तो वह अपनी मान्यतायें भर सकता है, और न अनर्गल बातों का प्रवेश कर सकता है। वह तो सत्य का खोज करने वाला होता है। अतः सत्य का ही वर्णन करता है। हाँ, कभी-कभी किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा किसी बात को अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ा-चढ़ा कर कहने के कारण कुछ भ्रान्तियाँ हो जाना सम्भव हो सकता है, किन्तु ऐसी सम्भावनायें कम हो सकती हैं और कुछ हो भी जायें तो भी उन से तथ्य पर पर्दा नहीं पड़ जाता अपितु ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पढ़ने से तथ्य उजागर हो ही जाता है।

इतने पर भी ऋषि दयानन्द का विपुल साहित्य उपलब्ध है जिसका अधिकांश भाग उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुका था। सहस्रशः पृष्ठों और विविध विषयों के अनेक ग्रन्थों के रूप में लिखे गये उनके साहित्य के अध्ययन से उनके मन्तव्यों का पता लग जाता है। उन मन्तव्यों के अनुसार ही आर्य समाज का कार्यक्रम है। अभिप्राय यह है कि उन मन्तव्यों के प्रचार-प्रसार के लिये ऋषिवर ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में आर्य समाज की स्थापना की थी। इस प्रकार से आर्य समाज अपने संस्थापक महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों के प्रचार-प्रसार का संस्थान है और उसे इसी रूप में समझा जाना चाहिये। जो लोग आर्य समाज को इस रूप में नहीं समझते वह भूल करते हैं— महती भूल, ऐसी भूल जो न तो उनके स्वयं के लिये हितकारक है और न मानव समाज की हित-साधक।

यदि आर्य समाज के सदस्य बन जाने वाले लोग भी इस

भूल में फँसे हैं तो और भी खेद जनक बात है और साथ ही भय यह है कि ऐसे लोगों की संख्या वृद्धि के साथ-साथ आर्य समाज पथ-भ्रष्ट हो जायेगा। वर्तमान समय में ऐसा परिलक्षित भी होने लगा है और उसका कारण है उपर्युक्त प्रकार के सदस्यों की संख्या वृद्धि।

इस प्रकार के सदस्यों की संख्या-वृद्धि हो जाने से समाजों की संख्या की वृद्धि भी हो जायेगी, किन्तु वह ऋषिवर दयानन्द की आर्य समाज न होगी। वह या तो मतवादियों की, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण वालों की आर्य समाज होगी और या फिर ऐसे लोगों की समाज – जिन्हें कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार एकत्र होकर अपना समय बिताना था, और किसो नाम से न सही–आर्य समाज के नाम से सही। एक क्षेत्र मिल गया, जन सहयोग भी मिला, नेता गिरी भी मिली और इस प्रकार व्यापक रूप में मन-बहलाव होने लगा। न स्वयं के जीवन में सुधार आया और न स्व-परिवार के—समाज की तो बात ही क्या कहनी ?



आर्य समाज क्लब नहीं है ।

ऐसे लोग कहीं भी जायें ? किसी भी संस्था में जायें ? किसी भी नाम से संगठित हों, मन-बहलाव के साधनों तक ही सीमित रहते हैं । खेल, नाटक, भोज इत्यादि उनका मिशन होता है । उन के सामने न सिद्धान्त होता है न तथ्यान्वेषण । न वह तथ्य और सिद्धान्त को जानते हैं ग्रौर न जानना चाहते हैं । भोज अर्थात् खाने पीने के नाम पर धन भी बढ़—चढ़ कर देते हैं और इस कार्य के लिये परिश्रम भी करते हैं, फिर खाने-पीने में पीछे रहने का तो प्रश्न ही क्या ?

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर समाज भवनों मे नाटक और लड़कियों के नृत्यों के आयोजन भी बहुत बढ़-चढ़ कर करते और कराते हैं और आगे बढ़े तो किसी राजनीतिक नेता का स्वागत समारोह समाज भवन में करा दिया, उसे मान-पत्र दे दिया ग्रौर बस छुट्टी । यह सब कार्य क्लबों के हैं, आर्य समाज के नहीं । इनसे ग्रार्य समाज का दूर का भी सम्बन्ध नहीं । यह सब कार्य उन्हीं के द्वारा होते हैं, जिन्होंने न तो ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र पढ़ा, न उनके ग्रन्थों का ग्रध्ययन किया ग्रर्थात् जिन्होंने ऋषिवर के मन्तव्यों को नहीं समझा । कहना यह चाहिये कि ऐसे लोग ग्रार्य समाज के सदस्य तो जिस-किसी प्रकार भी बन गये, किन्तु आर्य समाजी नहीं बने । आर्य समाज को केवल क्लब की भावना से ही स्वीकार किया है और इसी भावना से उनके मंच का उपयोग करते हैं ।

आर्य समाज सम्प्रदाय नहीं है ।

दूसरी प्रकार के लोग वह हैं, जो आर्य समाज को एक सम्प्रदाय मात्र समझते हैं। इन्होंने भी न तो ऋषिवर दयानन्द का जीवन चरित्र पढ़ा। और न उनके द्वारा लिखे हुए किसी ग्रन्थ को ही पढ़ा। पढ़ना क्या – ऋषि के ग्रन्थ न देखे और न उन्हें यह पता कि उन्होंने कोई ग्रन्थ लिखा है। कुछ को ऋषि के लिखने की जानकारी तो है, किन्तु उनके मुख्य ग्रन्थों संस्कारविधि और सत्यार्थ प्रकाश–के नाम तक ज्ञात नहीं।

ऐसे लोग आर्य समाज को केवल हवन-सम्प्रदाय समझते हैं। नयी दिल्ली में एक आर्य समाज के कोषाध्यक्ष महोदय कहने लगे "स्वामी जी हम तो यज्ञ.........।"मैंने उनकी बात को मध्य में ही काटकर कहा "आप तो यज्ञ क्या ? यज्ञ शब्द के अर्थ भी नहीं जानते। केवल घी –सामग्री जला लेने का नाम यज्ञ नहीं है।" भला जिसे यज्ञ शब्द के अर्थ नहीं आते, वह यज्ञ कैसे हो सकता है। "यजमानो वै यज्ञः" यजमान को यज्ञ होना ही चाहिये, किन्तु जो व्यक्ति यज्ञ शब्द के अर्थ नहीं जानता, वह यज्ञ (अग्निहोत्र) की प्रक्रियाओं की संगति कदापि नहीं लगा सकता और जो अग्निहोत्र की प्रक्रियाओं की संगति नहीं लगा सकता उन्हें समझने और उन की संगति लगाने की योग्यता से दूर है, वह यज्ञ कैसे हो जायेगा ? उसका जीवन यज्ञमय कदापि नहीं बन सकता। वह तो साम्प्रदायिक है नितान्त साम्प्रदायिक। वह समझता है कि आर्य समाज हवन करने वालों का संगठन है और किसी प्रकार उसके मस्तिष्क

में यह बात बैठ गयी है कि हवन करना धर्म है और इसके करने से मोक्ष या स्वर्ग अर्थात् परमात्मा मिल जाता है। बस वह हवन में श्रद्धा रखने लगा – वह श्रद्धा, जो वास्तव में श्रद्धा नहीं अपितु अन्ध विश्वास है।

हवन करना श्रेष्ठ कर्म है महान् श्रेष्ठ कर्म और तथ्य यह है कि हवन मानव–मात्र के द्वारा किया जाना चाहिये। इससे सुगन्ध का प्रसारण और दुर्गन्ध का निवारण होकर न केवल मनुष्य जाति का अपितु प्राणि–मात्र का लाभ और हित सिद्ध होता है। यह परोपकार का परमोत्कृष्ट साधन है, परन्तु सुगन्ध का प्रसारण तो अग्निहोत्र की क्रियाओं को बिना किये सुगन्धित द्रव्यों को जलाकर भी किया जा सकता है। जब सुगन्ध का प्रसारण होगा तो उसके परिणाम स्वरूप दुर्गन्ध का निवारण भी हो ही जायेगा। परन्तु यज्ञ का एक अंश अर्थात् सुगन्धित फैलाने का यज्ञ (शुभ कर्म) हो जायेगा, किन्तु यज्ञमय जीवन 'यजमानो वै यज्ञः" जो यज्ञ का वास्तविक लाभ है, वह नहीं हो पायेगा। साम्प्रदायिक भावना व अभिरुचि की पूर्ति तो हो जायेगी, किन्तु धार्मिक जीवन नहीं बन पायेगा।

पञ्जाब के जालन्धर नगर की एक समाज के प्रधान ने आर्य समाज भवन में दैनिक यज्ञ के प्रसंग में कहा कि 'यदि यहाँ आकर नित्य यज्ञ न करें तो आर्य समाज बनाना ही व्यर्थ हुआ।" मैंने उनसे निवेदन किया कि यह आर्य समाज नहीं है। बिगड़कर बोले "मैं बाइस वर्ष पाकिस्तान में (पाकिस्तान बनने से पहले उस क्षेत्र में जो पाकिस्तान में चला गया है) आर्य समाज का प्रधान रहा हूँ और छः वर्ष से यहाँ प्रधान हूँ।" मैंने कहा "मुझे यही तो आश्चर्य है कि आप अट्ठाइस वर्ष आर्य समाज के प्रधान रहकर यह भी नहीं जान सके कि आर्य समाज किसे कहते हैं?

जो व्यक्ति इतनी लम्बीअवधि आर्यसमाज के उत्तरदायी पद पर रहकर आर्य समाज के अर्थ नहीं समझा और जिसे आर्य समाज और आर्य समाज मन्दिर का अन्तर तक ज्ञात नहीं, जो भवन को ही संस्था समझता है, क्या वह आर्य समाजी कहलाने का अधिकारी है ? नहीं : कदापि नहीं। वह तो साम्प्रदायिक है, नितान्त साम्प्रदायिक और आर्य समाज भवन में साम्प्रदायिक भावना से ही आकर दैनिक अग्निहोत्र में सम्मिलित हो जाता है। वह आर्य समाज के मन्तव्यों को समझने की योग्यता से रिक्त है। आर्य समाज के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ऐसे व्यक्ति से कोई आशा करना दुराशा–मात्र है।

मेरा अभिप्राय यह नहीं कि आर्य समाज मन्दिर में यज्ञ न किया जाये, किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि आर्य समाज मन्दिर आर्य समाज का कार्यालय है, आर्य समाजियों का सभा भवन है। घर में तो यज्ञ किया न जाये जिसका स्वयं आर्य समाज के संस्थापक ऋषिवर दयानन्द ने 'पञ्च महायज्ञ विधि, संस्कार विधि, सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में वर्णन व विधान किया है – आर्य समाज मन्दिर में आकर यज्ञ कर लिया जाये। क्या यह ऋषिवर दयानन्द के विधान के विरुद्ध नितान्त साम्प्रदायिक भावना नहीं है ? और क्या यह ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण (अन्ध–परम्परा के खण्डन के विरुद्ध उलटा उस ऋषि के ही मिशन में 'काबे में कुफ्र' के समान अन्ध-परम्परा चलाना नहीं है ? और क्या इस प्रकार की भावना, अभिरुचि और दृष्टिकोण रखने वाले लोग आर्य समाजी कहलाने के अधिकारी हैं ?

वास्तविकता यह है कि आर्य समाजी बनने वाले लोग पौराणिक घरों से ही आते हैं। उन के वही अन्ध–परम्परा वाले अन्धविश्वासी संस्कार होते हैं। यदि आर्य समाज में प्रवेश के समय ही

ही उन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित अथवा वैचारिक क्रान्ति का स्रोत उनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को मिल जाता है या फिर जो सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर ही आर्य समाजी बनते हैं तो उनके अन्ध-विश्वासी संस्कार समाप्त हो जाते हैं और वह अन्ध-परम्पराओं से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

इसका कारण यह है कि वह महर्षि के दृष्टिकोण और आर्य समाज को समझ गये होते हैं। ऐसे लोग कहीं भी जायें, किसी भी क्षेत्र में रहे—वह न तो कभी अन्ध-विश्वासों में फँसते हैं और न किसीके कहने से बहकते हैं। वास्तविक अर्थों में वही आर्य समाजी कहलाने के अधिकारी होते हैं।



आर्य समाज सभी का हितैषी है।

जो लोग आर्य समाजी नहीं बने हैं, वह आर्य समाज को अपना विरोधी समझते हैं। चाहे वह हिन्दू हों अथवा मुसलमान, ईसाई हों, जैनी हों अथवा सिक्ख, पारसी आदि कोई भी हों किन्तु इसमें नाम मात्र की भी सचाई नहीं है। सत्य तो यह है कि आर्य समाज सभी लोगों का, समस्त संसार का ही नहीं अपितु विश्व ब्रह्माण्ड और न केवल मनुष्य-मात्र का अपितु प्राणि-मात्र का हितैषी है।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के शब्दों में 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

विज्ञ पाठक विचार करें कि संसार का उपकार करना जिस संस्था का मुख्य उद्देश्य हो, वह संसार की हितैषी है अथवा नहीं और उससे बढ़कर संसार का हितैषी और कौन हो सकता है? और फिर संसार के उपकार की बात कहना एक अलग बात है, किन्तु उपकार कैसे हो सकता है, यह दूसरी बात। आर्य समाज के स्वनाम धन्य संस्थापक ने तो संसार के उपकार का प्रकार अर्थात् उसके सूत्र भी आर्य समाज के उपर्युक्त नियम में ही बता दिये हैं।

पहला सूत्र है शारीरिक उन्नति करना। शारीरिक से अभिप्राय है स्वास्थ्य सम्बन्धी। आर्य समाज गुरुकुल शिक्षा-पद्धति द्वारा बालकों से ब्रह्मचर्य का पालन कराके और जीवन में संयम पूर्वक

रहने के संस्कार डालकर शारीरिक उन्नति का सूत्र लागू करना चाहता है। इससे शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट मानवों का निर्माण होगा। स्वस्थ मानव सन्तोनोत्पत्ति करने और वह भी स्वस्थ सन्तान की उत्पत्ति करने में समर्थ होता है।

इस नियम का दूसरा सूत्र है आत्मिक उन्नति करना। गुरु-कुलीय शिक्षा के द्वारा बालक-बालिकाओं में आध्यात्मिक भूख जागृत की जाती है। उन्हें ईश्वर का ध्यान अर्थात् सन्ध्या करनी सिखायी जाती है और ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की जानकारी करायी जाती है।

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के दूसरे नियम में परमात्मा के स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी करादी है, वह नियम निम्नलिखित है

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

विश्व मानवता परमात्मा के नाम भटक तथा बहक रही है। ऋषि दयानन्द ने उक्त नियम में बताया है कि यह सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है सत् वह सदा रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता तथा वह चित् – चेतन है, ज्ञानी है और उसका स्वरूप आनन्द है। आनन्द देखने की नहीं, अनुभूति की वस्तु है अतएव उसके दर्शन का नहीं अपितु उसके स्वरूप (आनन्द) के अनुभव का प्रयत्न करना चाहिये। वह नेत्रों द्वारा नहीं अपितु मन से होगा, क्योंकि आनन्द की अनुभूति मन का विषय है, इंद्रियों का नहीं।

दूसरी बात बतायी है परमात्मा के निराकार होने की। निराकार अर्थात् जिसका कोई आकार, कोई डील–डौल न हो और डील–डौल न होगा तब–जब शरीर न होगा। इसका अर्थ है कि वह शरीरधारी नहीं है, और जो शरीरधारी नहीं है. उसकी मूर्ति नहीं बनायी जा सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि मूर्ति पूजा निरर्थक है। आगे कहा है, वह सर्व शक्तिमान है अर्थात् अपने कर्तव्य कर्मों में उसे किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं और न किसी उपकरण की आवश्यकता है। वह न्यायकारी है अर्थात् जैसा जो करता है, वैसा ही भोगता है। वह न किसी को छूट देता है और न अकारण दुःख–रूप दण्ड तथा सुख-रूप पुरस्कार।

वह दयालु है, उसके स्वभाव में निर्दयता नहीं है। वह अजन्मा है अर्थात् उसका न कभी जन्म हुआ और न होगा। कुछ लोग परमात्मा को अवतार लेने वाला अर्थात् समय–समय पर जन्म धारण करने वाला कहते हैं। यह उनकी भ्रान्ति है। वह कहते हैं कि वह दुष्टों के संहार के लिये जन्म लेता है। परमपिता परमात्मा विना जन्म लिये अशरीरी रहकर जड़-चेतनमय विश्व ब्रह्माण्ड को उत्पन्न कर इसकी व्यवस्था बनाये रखता है और जीवात्माओं द्वारा मानव शरीर धारण कर किये गये समस्त अच्छे बुरे कर्मों की व्यवस्था रखकर उन्हें उसमें से प्रत्येक को स्व-स्व कर्मानुसार विविध योनियों और जन्म जन्मान्तरों में भेजकर यथा-योग्य कर्मफल रूपी भोग प्रदान करता है, वह अपने ही उत्पन्न किये किसी व्यक्ति को मारने के लिये जन्म ले अर्थात् विना शरीर धारण किये उसे मार भी न सके, यह नितान्त नासमझी की बात है। वह अजन्मा ही है, अजन्मा ही रहेगा। न उसने कभी जन्म धारण किया है न भविष्य में कभी जन्म लेगा।

वह अनन्त है अर्थात् उसका कभी भी अन्त नहीं होगा। वह पहले भी था, सृष्टि की उत्पत्ति से पहले भी था, अब भी है भविष्य में भी रहेगा। अनन्त अर्थात् असीम भी है, कहीं उसका अन्त नहीं होता अर्थात् सीमा समाप्त नहीं होती। निर्विकार है, उसमें विकार, विकृति अर्थात् बिगाड़ नहीं होता। वह सदैव एक रस बना रहता है। प्रलय काल में भी ऐसा ही था, अब भी ऐसा ही है और भविष्य में भी ऐसा ही—जैसा अब है - ज्यों का त्यों बना रहेगा।

वह अनादि है। उसका आदि अर्थात् प्रारम्भ कभी नहीं था। इसी कारण से उसे अनादि तत्व कहा जाता है। उसकी उपमा का अर्थात् उस जैसे गुण कर्म—स्वभाव युक्त अन्य कोई तत्व नहीं है, इसलिये वह अनुपम है। वह सर्वाधार—सब का आधार, सब का आश्रय, सबका सहारा है और सबका धारण करने वाला है विश्व ब्रह्माण्ड को उसी ने धारण किया हुआ है। सर्वेश्वर-सबका ईश्वर सबका सबसे श्रेष्ठ शासक अर्थात् न केवल मनुष्यों अपितु मनुष्य में जो शासकगण हैं, उनका भी शासक है। मनुष्यों का ही शासक नहीं अपितु समस्त जड़-चेतनादिकों पर उस सबसे श्रेष्ठ शासक का शासन है।

वह सर्वव्यापक- सबके, न केवल प्राणि-मात्र के अपितु अप्राणि अर्थात् जड़ पदार्थों के भीतर भी व्याप रहा है और समस्त जड़-चेतनादिकों से बाहर जो आकाश और जो अन्तरिक्ष है, उसमें भी व्याप रहा है। इसी कारण समस्त जड़-चेतन के भीतर की स्थिति को भी जानता है और इस समस्त जड़-चेतन के भीतर की स्थिति को जानने के कारण उसे सर्वान्तर्यामी कहते हैं।

वह अजर है, उसे कभी जरा, वृद्धावस्था नहीं सताती। वृद्धावस्था शरीर में व्यापती है। परमात्मा क्योंकि अशरीरी है,

इसलिये उसे वृद्धावस्था प्राप्त होने का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। जरा का अर्थ जीर्णता भी है। परमात्मा के अशरीरी होने से उसमें जीर्णता को अवसर ही नहीं है। जीर्णता अर्थात् निर्बलता भी शरीर के जीर्ण होने पर ही प्रकट होती है वह अमर है अर्थात् मरता कभी नहीं। क्योंकि शरीर नहीं है अतः जीर्णता नहीं आती और जब जीर्णता ही नहीं आती तो मृत्यु भी नहीं आ सकती। मृत्यु नाम भी जीव और शरीर के सम्बन्ध विच्छेद होने का है। परमात्मा का शरीर ही नहीं तो विच्छेद किसका होगा ? अतः वह अमर है। वह अभय भी है। भय होता है अपने से शक्तिशाली अथवा अपने समान से। परमात्मा से न कोई शक्तिशाली है और न कोई उसके समान, एतदर्थ उसे भय नहीं होता।

वह नित्य अर्थात् सदा और प्रत्येक समय रहने वाला है। ऐसा कोई समय नहीं बीता, जब परमात्मा नहीं था। अब भी वह है और भविष्य में भी वह सदा-सर्वदा रहेगा, अतएव वह नित्य है। वह पवित्र है—इतना पवित्र कि कोई भी किसी भी प्रकार की अपवित्रता उसे नहीं लगती। अपवित्रताय लगती हैं शरीर में—वह है शरीर रहित अतः उस पर अपवित्रताओं का लगाव नहीं होता, इसीलिये उसे निर्लेप कहते हैं वही सृष्टिकर्ता अर्थात् सृष्टि का उत्पन्न करने वाला है अतएव उसी की उपासना करनी योग्य है—अन्य की नहीं। इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप को समझ कर उपासना करने से ही आत्मिक उन्नति होती है, अन्य प्रकार से नहीं। इस प्रकार से आत्मोन्नति किये हुए व्यक्तियों के द्वारा जो समाज बनेगा, वह आचार-विचार से पवित्र होगा। दूसरे इस प्रकार के शारीरिक और आत्मिक उन्नति किये हुए व्यक्ति ही समाज को उन्नति की और अग्रसर कर सकते हैं।

आर्यसमाज का आठवां नियम है अविद्या का नाश और

विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।" अविद्या का नाश होगा ही विद्या की वृद्धि से। विद्या की वृद्धि के प्रकार हैं 'विद्यालय, पुस्तकालय, उपदेश आदि। आर्य समाज अपनी स्थापना के समय से ही प्रत्येक प्रकार से विद्या की वृद्धि में लगा है। उसने भारत और भारत से बाहर विदेशों में भी सहस्रों की संख्या में प्राथमिक विद्यालयों से लेकर महाविद्यालय तक खोले हुए है। लड़कों और लड़कियों के लिये लगभग १०० गुरुकुल खोले हुए हैं। सहस्रों पुस्तकालय और वाचनालय आर्य समाज मन्दिरों में स्थापित किये हुए है। दर्जनों पत्र-पत्रिकायें आर्य समाज की शिरोमणि सभाओं द्वारा तथा कई अन्य आर्य समाजी विचार की संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। जहाँ-जहाँ आर्य समाजें हैं, वहाँ-वहाँ वर्ष में एक बार अथवा एक से अधिक बार सत्संगों का आयोजन कर और विद्वानों को उस आयोजन में आमंत्रित कर प्रवचनों द्वारा सर्वसाधारण को विद्या (ज्ञान) दान किया जाता है। यह सभी आर्य समाज के सर्वहितैषी होने के प्रमाण हैं।

आर्य समाज के नौवें नियम में महर्षि ने यह विधान कर कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये" आर्य समाज के सभी के हितैषी स्वरूप को नितान्त उज्जवल कर दिया है। आर्य समाज के दसवें नियम में प्रत्येक हितकारी नियम में सबकी स्वतन्त्रता की चर्चा करके भी सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहने का विधान किया है।

पाठकगण! यह सम्पूर्ण विवेचन यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि आर्य समाज सर्व हितैषी संस्था है, वह कोई सम्प्रदाय, मत या पंथ नहीं है।

आर्य समाज—आर्य समाज ही है

प्रिय पाठकगण ! ऊपर दो स्तम्भों में हमने यह चर्चा की है कि आर्य समाज न तो क्लब है और न सम्प्रदाय है। साथ ही आर्य समाज के सर्व हितैषी रूप का भी संक्षिप्त वर्णन कर दिया है इस स्तम्भ में हम यह कहना चाहते हैं कि आर्य समाज—आर्य समाज ही है।

आपने इससे पहले स्तम्भ में आर्य समाज के सर्व हितैषी स्वरूप की थोड़ी सी चर्चा पढ़ी है। सब का हित-चिन्तन और सर्व हित कारक कार्यों को वही लोग करते हैं, जो आर्य होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि आर्यत्व परहित-चिन्तन और परहित-साधन में ही निहित है। स्व-हित तो पशु—पक्षी तथा अनार्य मनुष्य सभी करते हैं। आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। जो परहित चिन्तन और परहित साधन न करे, वह आर्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

परहित-चिन्तकों और परहित साधकों से मिलकर बना हुआ समाज - आर्य समाज कहलाता है। आर्य समाज का छठा नियम इसकी स्पष्ट घोषणा कर रहा है "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है" न केवल उद्देश्य अपितु मुख्य उद्देश्य है। इसका अर्थ यह है कि आर्य समाज की स्थापना महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संसार के उपकार के लिये ही की थी।

आर्य शब्द संस्कृत की 'ऋ' गतौ धातु से बना है। जिसमें गति हो, जो आगे बढ़ने के लिये उत्तरोत्तर प्रयत्नशील हो, वह आर्य है अर्थात् आर्य का अर्थ है प्रगतिशील। इस प्रकार आर्य समाज का अर्थ हुआ प्रगतिशील, उन्नतिशील लोगों का समाज। उन्नति दोनों प्रकार की होती है, भौतिक भी और आध्यात्मिक भी। अतएव आर्य समाज का अर्थ हुआ उत्तरोत्तर, आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की उन्नति करने वालों का समाज। इसी प्रकार का समाज श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज कहलाता है।

आर्य समाज के ९ वें नियम में यह कहकर कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये" परहित साधन तथा परोपकार को प्राथमिकता तथा स्व-हित पर परहित को वरीयता प्रदान कर दी है। इस प्रकार आर्य समाज ऐसे लोगों का समाज है कि जो स्वयं तो आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति करे ही— इस लोक और परलोक साधन में, इस लोक के साथ–साथ परलोक साधन में भी परम पुरुषार्थ करें ही, किन्तु अन्यों के हित के लिये भी पूर्ण सामर्थ्य के साथ जुटे रहें।

फिर ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के तीसरे नियम में 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म' बताया है, क्योंकि वह वेद को "सब सत्य विद्याओं का पुस्तक" मानते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ऋषिवर मानव-मात्र की उन्नति का साधन वेद को मानते हैं। ऐसी स्थिति में समस्त आर्य जनों और सामूहिक रूप से आर्य समाजों का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह यथा सम्भव स्व–शक्ति के अनुसार वेद के अध्ययन और उसके प्रचार-प्रसार में जुट जायें।

यही आर्य समाज का वास्तविक कार्य है इसी से विश्व मानवता का भला होगा।

आर्य समाज के द्वारा किये जाने वाले अन्य समस्त सेवा कार्य तो सम-सामयिक, अल्पकालिक और वेद को जनमानस तक पहुँचाने के लिये साधन तथा जनसम्पर्क के सेतु मात्र हैं। यही आर्य समाज है और यही आर्य समाज का स्वरूप है। इसी के लिये हम यह कहते हैं कि आर्य समाज--- आर्य समाज है, न क्लब है और न सम्प्रदाय-मत-पंथ आदि है। शमित्योम्।



वैदिक संस्थान नजीबाबाद के सदस्य बन कर धर्म प्रचार के महत्वपूर्ण कार्य में सहयोग कीजिये ।

१- प्रधान संरक्षक--

कम से कम १०००) रुपये देने वाले संस्थान के प्रधान संरक्षक होते हैं।

२- संरक्षक--

कम से कम ५००) रुपये देने वाले संस्थान के संरक्षक होते हैं।

३- सहायक--

कम से कम २५०) रुपये देने वाले संस्थान के सहायक होते हैं।

टिप्पणी:- एक मुश्ट न दे सकने की स्थिति में यह राशियाँ एक वर्ष की अवधि में मासिक या त्रैमासिक करके भी पूरी की जा सकती हैं। यह तीनों श्रेणियों के दानी संस्थान के आजीवन सदस्य होते हैं। तथा इन सभी दानी महानुभावों के नाम संस्थान के वार्षिक विवरण में प्रकाशित किये जाने का प्रावधान है।

४- वार्षिक दानी--

वह महानुभाव होते हैं, जो कम से कम २५) रुपये वार्षिक संस्थान को दान देते हैं।

५- विशेष दानी--

१५०) देने वाले दानी महानुभावों का नाम एक लघु-पुस्तक (ट्रैक्ट) पर प्रकाशित किया जाता है। दान दाता यदि अपने किसी सम्बन्धी की स्मृति में यह राशि देते हैं तो उस सम्बन्धी की स्मृति पुस्तक पर प्रकाशित कर दी जाती है।

उत्तम विचारों के अध्ययन और प्रचार के लिए मँगाईये।

—: संस्थान प्रकाशन :—

(श्री स्वामी वेद मुनि परिव्राजक कृत)

१- सृष्टि विज्ञान और वेद	५० रु० सैकड़ा
२- महामृत्युञ्जय मन्त्र	५० रु० सैकड़ा
३- मनुष्य बन	५० ,, ,,
४- आदर्श परिवार	५० ,, ,,
५- एक ही रास्ता	५० ,, ,,
६- मृग-तृष्णा	५० ,, ,,
७- कर्म-व्यवस्था	५० ,, ,,
८- तीन प्रकार के बन्धन	५० ,, ,,
९- माता-पिताओं से	५० ,, ,,
१०-हिन्दु नहीं आर्य	५० ,, ,,
११-पत्ते पर तेरा निवास	५० ,, ,,
१२-नारी का शील	५० ,, ,,
१३-पथरीली नदी	७५ ,, ,,
१४-सात मर्यादायें	५० ,, ,,
१५-अमृतमय छाया	५० ,, ,,
१६-आर्य समाज क्या है ?	५० ,, ,,
१७-कुछ ज्वलन्त प्रश्न	५० ,, ,,
१८-शिक्षा-पद्धति और छात्र-समस्या	५० ,, ,,
१९-भारतीय इतिहास विरोधियों को शास्त्रार्थ-निमन्त्रण	१ रुपया ५० पैसे प्रति
२०-सुमन-संचय	१ ,, प्रति